विकास की चुनौतियाँ

(अल्प-विकसित देशों में यांत्रिकी और विज्ञान की समस्याएँ)

डॉ० दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी

प्रकाशक
नौजवान प्रकाशन
१६८ रामभवन एलनगंज,
इलाहाबाद-२

उद्देश्य

●

समाज का विकास जटिल रास्तों से होता है। इसकी गति-विधि को समझा जा सकता है, और जनहित के लिये मनोवांछित परिवर्तन की दिशा में समाज के विकास को मोड़ा जा सकता है। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब बहुमत वैज्ञानिक समझ से युक्त हो। स्वार्थी शासक वास्तविक ज्ञान-विज्ञान को जन-मानस तक पहुँचाने में हिचकते हैं, बहुधा रुकावटें पैदा करते हैं।

नौजवान फेडरेशन की ओर से विज्ञान, दर्शन, राजनीति आदि की समस्याओं पर पुस्तकें प्रकाशित करके नौजवान दोस्तों एवं अन्य दोस्तों को समाज के विकास के प्रति उन्हें सचेत रखना हमारा उद्देश्य है

अनुवादक : नीलकांत
मूल्य : पचीस पैसे
पहला संस्करण : १९६७ ईसवी

* * *

विकास की चुनौतियाँ

(अल्प-विकसित देशों में यांत्रिकी और विज्ञान की समस्याएँ)

डॉ० दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी

[प्रस्तुत निबंध डा० कोसम्बी की जन-हितैषी वैज्ञानिक प्रतिभा का ज्वलंत प्रमाण है। इसमें उन्होंने सरल विधि से और अकाट्य तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि पिछड़े देशों की शासन-व्यवस्था यदि जनवादी नहीं है, तो बड़े डील-डौल की योजनाओं, निर्माण-कार्यों, उद्योग-धंधों और उनसे होने वाले तथा-कथित जन-कल्याण आदि की बातें मात्र दिखावटी और देशी व विदेशी लुटेरों के स्वार्थों पर परदा डालने वाली चालें हैं। विज्ञान और यांत्रिकी देश के चौमुखी विकास के लिए आज अनिवार्य शर्तें बन गयी हैं; मगर उनका उपयोग कैसे हो रहा है, और कैसे होना चाहिए, उनसे किसका फायदा हो रहा है और किसका फायदा होना चाहिए, निबंध में ये मूलभूत प्रश्न हल के साथ प्रस्तुत किए गये हैं; निश्चय ही इन समस्याओं पर सोच-विचार करने वाले पाठकों को इससे अपूर्व सहायता मिलेगी।]

यहाँ मुझे जो कुछ कहना है, स्वीकारतः, दो कारणों से अपर्याप्त होगा। पहला तो यह है कि हम में से अधिक लोग

समस्याओं से परिचित हैं; दूसरा यह है कि मुझे कोई **दिखावटी** हल नहीं प्रस्तुत करना है, केवल अपेक्षाकृत एक या दो छोटे तकनीकी संकेत प्रस्तुत करना है, जो हरेक मामले में विशेष समस्याओं के विश्लेषण में सहायक सिद्ध होंगे और सुनियोजित हल की ओर बढ़ने में मदद देंगे।

पृष्ठभूमि का महत्त्व सबसे अधिक है। हम में से अधिक लोग विज्ञान और यांत्रिकी पर इतना अधिक जोर दे देते हैं कि हम उस संदर्भ को ही भूल जाते हैं, जिसमें कि हमें विज्ञान और यांत्रिकी दोनों को ही लागू करना है। संदर्भ को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है जैसे, **राजनीतिक, आर्थिक,** और **समाजशास्त्रीय** : इनमें से प्रत्येक एक दूसरे से गहराई से अन्तर सम्बन्धित है। आखिरकार, हमारा अपना विज्ञान और यांत्रिकी कोई विशेष प्रकार का नहीं है। अरबी विज्ञान या भारतीय बीज-गणित, जो कभी विश्व की **अग्रगण्य** अभ्यास पद्धतियाँ थीं, अब उन दोनों का वर्तमान युग में कोई स्थान नहीं रह गया। कोई अफ्रीकी रसायन-शास्त्र या दक्षिण-पूर्व एशिया की इंजीनियरिंग जैसी बात नहीं कह सकता। विज्ञान और यांत्रिकी की राष्ट्रीय सीमाएँ नहीं होतीं। इसलिए, जिस पृष्ठभूमि में उन्हें कार्य करना ही है, वह हमारे लिए सोच-विचार की प्रधान वस्तु हो जाती है।

संदर्भ

राजनीतिक परिस्थिति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अधिकतर अल्प-विकसित देश एक लम्बे समय से विदेशी शासन के नीचे रहते आए हैं। वास्तव में इसी प्रधान कारण से वे अल्प-विकसित देश

बने हुए हैं। अतः, स्वाधीनता सबसे पहले चाहिए। उदाहरण के लिए हम एंगोला या मोजाम्बिक के लिए विज्ञान और यांत्रिकी की बात नहीं कर सकते। दक्षिण अफ्रीका की परिस्थिति तो कहीं और अधिक जटिल है। उस देश में कुछ बहुत थोड़े ही बड़े यांत्रिकीय विकास हो सके हैं, उनकी प्रयोग-शालाओं और इंजीनियरिंग के कार्यों को किसी तरह भी तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। किन्तु सच्चे अफ्रीकी लोग तो दक्षिण अफ्रीका में नागरिक तक नहीं होने पाए हैं, उनके लिए वह अल्प-विकसित पड़ा हुआ है, जब कि धनवान श्वेतांगों और लंदन के सट्टेबाजों के लिए, जो उनकी पीठ पर सवार हैं उस देश को विकास की पूर्णतः संतोषप्रद स्थिति में समझा जाता है। कुछ कम विकास के होते हुए भी, रोडेशिया की भी वही हालत है।

ऐसे विषयों पर हम कोई हल प्रस्तुत नहीं कर सकते, क्यों कि हमारी सभा ने विज्ञान और यांत्रिकी तक ही स्वयं को सीमित कर रखा है। फिर भी, संदर्भ के अनुसार हमें ज्ञात होता है कि ऐसे देशों की विशेष समस्याओं पर यहाँ विवेचन भी नहीं हो सकता। कुछ अपवादमूलक सम्भावनाएँ हो सकती हैं। शायद, हांग-कांग उन अपवादों में से एक हो सकता है। किन्तु सुस्पष्ट राजनीतिक प्रश्न के एक हल के बिना, हांग-कांग की समस्याओं पर भी यहाँ विचार करना कठिन होगा।

दूसरा विन्दु, जिसे बहुत लोग प्रधान समस्या कहेंगे, आर्थिक है। वास्तव में 'अल्प-विकसित' शब्द से आर्थिक अल्प-विकास ही ध्वनित होता है। विकास की वास्तविक अभिव्यक्तियों के साथ हमारे देशों में विकास के लिए आवश्यक साधनों विद्युत-शक्ति

की सप्लाई, कारखाने, रेलवे और जहाज रानी, का अभाव है। मोटर यातायात, वायुयान, और साथ ही उपभोग की वस्तुओं एवं अच्छे निवास का अभाव है।

सौभाग्य से सभी देशों में साधनों का अभाव नहीं है। अनेक अरबी देशों में तेल और प्राकृतिक गैस की खोज हुई, जो माल होने के कारण उनकी आर्थिक समस्याओं को हल करने में सहायक हो सकती है। फिर भी, तेल या अन्य दूसरे साधनों का उपयोग ठीक से होता है या नहीं, दुबारा संदर्भ पर निर्भर करता है। पहले तो यह कि विदेशियों को लूट का हिस्सा न लेने दिया जाय, जैसा कि ईरान में अनेक सालों तक हुआ। दूसरे, जो सत्ताधारी हैं, अरबी नायकों की तरह जीवन बिताने के लिए और अपने परिवार के लिए राजभवनों का निर्माण करवाने की अपेक्षा देश को विकसित करने के लिए अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव करें।

अतः यहाँ फिर एक आन्तरिक राजनीतिक समस्या बनी रहती है, उदाहरणार्थ—कौन योजनाएँ बनाता है और किसके लाभ के लिए? बड़े डीलडौल की योजनाओं की घोषणा कर देना ही काफी नहीं है; जनता को विश्वास भी दिलाना होगा कि वे इससे लाभान्वित होंगे और जनप्रिय सहयोग प्राप्त करना होगा। घाना और इंडोनेशिया में जो विकास हुए उनसे दूसरी ही स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस प्रश्न की गहराई में जाने से कष्ट ही होगा।

फिर भी, यहाँ हम एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त तक पहुँच जाते हैं: **अल्प-विकसित देशों के लिए विकास की सुनियोजित दिशा आवश्यक है, जिसका अर्थ अनिवार्यतः एक सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था है।**

विदेशी विशेषज्ञ

इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना ही काफी नहीं है। सन्दर्भ पुनः आपके ध्यान को अपनी ओर खींचता है। कौन योजना बनाता है और उससे वास्तविक लाभ किसे होता है? सलाह देने और योजनाओं की रूपरेखा तैयार करने के लिए, विदेशी विशेषज्ञों को निमंत्रण देना, एक हल के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ईमानदारी की बात तो यह है कि इससे सफलता नहीं प्राप्त होगी। विदेशी विशेषज्ञ को एक पूर्णतः भिन्न वातावरण में, एक पूर्णतः भिन्न उद्देश्य के लिए योजना बनाने के उपयोग में लाया जाता रहा है। विकास के पथ के दरम्यान स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति वह बहुत ही कम ध्यान देता है। अक्सर तो यह होता है कि विदेशी विशेषज्ञ किसी कम्पनी से सम्बन्धित होने के कारण, उसके मालों को बेचने में दिलचस्पी लेता है। यहाँ हम चीन के अनुभवों से अच्छी सीख ले सकते थे, यदि राजनीतिक समस्या न होती, जिसने कि पुनः ऐसे मिलन-बिन्दु पर उस महान् देश से सहयोग प्राप्त करना असम्भव बना दिया है। किन्तु मैं जो कहना चाहता हूँ, उसे उदाहरण देकर समझाऊँगा।

एक उदाहरण

हमारी चीनी-उत्पादक सहकारियों में ईंधन के लिए खोई को जला दिया जाता था। एक तेज और विशेषतः ईमानदार विदेशी विशेषज्ञ ने संकेत किया था कि इससे खोई के अधिकतर तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, केवल राख ही बच पाती है। खोई कागज बनाने के काम में लायी जा सकती है। दूसरे प्रयोजनों के लिए तेल और

मोम अलग किया जा सकता है आदि। वास्तव में, भारतीय रसायनशास्त्री ने वस्तुतः सम्भावनाओं का विश्लेषण किया था, जिससे किसी विदेशी विशेषज्ञ की जरूरत न थी। यह संकेत किया गया कि सहकारियों या चीनी-कम्पनियों द्वारा स्वयं उचित कारखाने स्थापित किए जायँ, और खोई को उचित लाभ के लिए उपयोग में लाया जाय।

किन्तु व्यवहारतः मितव्ययता पूर्वक यह दो कारणों से नहीं किया जा सका। पहला यह कि, कारखाने की सभी मशीनों का आयात करना था। दूसरा, चीनी के उद्योग में ईंधन के रूप में काम आनेवाली खोई की मात्रा अलग कर देने पर, दूसरे ईंधन के लिए बड़ी लागत लगानी पड़ती। तेल बहुत ही कीमती है, चीनी उत्पादक क्षेत्रों में हमारे पास प्राकृतिक गैस नहीं हैं और कोयले का उपयोग करने का अर्थ यातायात पर अतिरिक्त दबाव डालना होगा। किसी भी तरह अतिरिक्त ईंधन के खर्च से एक सफल सहकारी और दूसरी घाटे पर चलने वाली सहकारी में उचित अन्तर तो आ ही जाता। **वर्तमान संदर्भ में** हंगेरी के विशेषज्ञों द्वारा हल प्रस्तुत किया गया था। उन्होंने ऐसे संकेत दिए, साथ ही विशद रूपरेखा बनायी, जिससे कि खोई का ईंधन के रूप में उपयोग भी होता रहे और उसके सारे मूल्यों को नष्ट होने से बचाया भी जा सके। इस वस्तु को टब में उबालना था और उससे उत्पन्न गैस ईंधन के काम आती, एक या इससे अधिक भट्ठियों को पूर्णतः गैस बर्नरों में बदल देना पड़ता क्योंकि खोई की कुल मात्रा सारी भट्ठियों को चालू करने के लिए पर्याप्त न होती। तब उबली खोई खेतों में सीधे-सीधे डाल दी जाती, जिससे साथ ही साथ खाद में मूलभूत बचत होती। वास्तव में, इससे

जमीन को ताजा बनाए रखने में अतिरिक्त लाभ होता, जो वर्षों तक रासायनिक खाद देने के कारण बरबाद हो जायेगी।

अन्ततः, मैंने संकेत किया था कि इससे शैक्षिक लाभ भी होगा। सहकारी के किसान सदस्य अपने निजी अतिरिक्त खोई के लिए भी उस पद्धति का उपयोग कर सकते थे और जानवरों के गोबर के लिए भी वही करते। वर्तमान समय में गोबर को सुखा कर उपलों में बदल दिया जाता है और ईंधन के उपयोग में लाया जाता है और इस तरह फिर खाद के रूप में उसके मूल्य को नष्ट कर दिया जाता है। इस तरह के अतिरिक्त वस्तुओं से उत्पन्न की गयी गैस खाद के मूल्य को नष्ट किए बगैर ईंधन के मूल्य को सुरक्षित रखती और साथ ही आसान तरीके से भोजन पकाने के काम भी आती।

इसके बावजूद भी योजना को लागू नहीं किया गया। इसके कारण राजनीतिक और समाजशास्त्रीय थे, क्योंकि जिन्हें अन्तिम निर्णय लेना था, उनके अपने विचार कुछ और थे, यदि उनके मन में कोई विचार रहा हो तो। हम अब भी खोई को बरबाद करते जा रहे हैं, यद्यपि सम्भावना है कि एक या दो कागज के कारखाने विदेशी विशेषज्ञ की सलाह से स्थापित किये जाएंगे।

सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था

अब तक कोई हल प्रस्तुत किए बगैर मैंने कठिनाइयों की ओर संकेत किया है। वस्तुतः अल्प-विकसित देशों के लिए उचित राजनीतिक ढाँचे पर एवं उचित विदेशी नीति पर मेरा मत बहुत सुदृढ़ है; किन्तु समय और स्थान की दृष्टि से उन विचारों को यहाँ विकसित नहीं करना है। हमें यहाँ न राजनीतिक सलाह

सब असम्भव रुकावटें प्रतीत होती हैं। बहुत ही कम लोग सामान्य जन को इसमें रुचि लेने के लिए प्रेरित करते हुए और गाँवों में उपलब्ध तकनीकों का उपयोग करते हुए, विकास की सम्भावना और जरूरत का अनुभव करते हैं। मैं अपनी बात को फिर एक उदाहरण दे कर स्पष्ट करूँगा।

गंग हो

जापानी आक्रमण के समय जब चीन के सभी प्रधान औद्योगिक क्षेत्र छिन गये और कौमिंतांग सेनाएँ देश के पिछले भाग में ठेल दी गयीं, तब सप्लाई की समस्या कठिन हो गयी। च्यांग काई शेक को अपनी सेनाओं के लिए बीस हजार कम्बलों की जरूरत पड़ी और उन्हें दूर से आयात करने का कोई रास्ता न था। वे कम्बल एक विशेष व्यक्ति और एक विशेष आन्दोलन गंग हो (सहयोगी कार्य) सहकारी द्वारा प्रदान किये गये, जिसका गठन न्यूजीलैंड के रेवी एली के निर्देशन में किया गया था। वह चीन को अच्छी तरह जानता था और वहाँ की जनता के साथ बीस साल से ऊपर तक काम कर चुका था। कम्बल दस्तकारी पद्धति से बनाए गये थे, गुण की दृष्टि से संतोषप्रद थे और कठोर उपयोग में टिकाऊ थे। बावजूद इसके, एक साल से कम समय में उनकी सप्लाई की गयी थी।

लगभग दो हजार मील से अधिक के घेरे में छोटी इकाईयों में बिखरे हुए, अशिक्षित मजदूरों के एक बड़े बहुमत को ले कर जिस पद्धति से इस कार्य को संगठित किया गया था, निसन्देह सम्पूर्ण योजना की सर्वाधिक विस्मयकारी विशेषता है। मेरी तो सिर्फ इतनी ही इच्छा है कि गंग हो का इतिहास लिख कर प्रकाशित

कर दिया जाय, और सभी अल्प-विकसित देशों के लिए उसे सुलभ कर दिया जाय। इस मामले में, एली ने हिसाब की एक ऐसी प्रणाली तैयारी की थी, जिससे क्लर्की के सभी कामों से छुट्टी मिल गयी थी। मजदूर अपनी इच्छा से मनपसन्द टुकड़ी में शामिल हो जाते, चाहे वह परिवार हो, चाहे दस्तकार-संघ, और एली हरेक मामले में आरम्भ के समय उन्हें निर्देशित करता। देश के पिछले हिस्से में रहने वाले गड़ेरिए ऊन तैयार करते थे। ऊन की एक-गाँठ कताई करने वालों को दे दी जाती थी, एक रंगीन दाना झोले में रख दिया जाता था। जब एक गाँठ कताई के परेतों पर खर्च हो जाया करती, तब झोले से एक रंगीन दाना निकाल लिया जाता था, जिससे कि मौजूद माल से शेष की तुलना की जाती थी। सूत की प्रति इकाई (बड़ी लच्छियाँ) तैयार की गयी, एक दूसरे रंग का दाना दूसरे झोले में रख दिया गया। उसी तरह से लच्छी बुनकरों को सप्लाई की गयी और कम्बल तैयार किए गये। बिना कागजी कार्य के, बिना अवरोध और बिना किसी क्षति के इस प्रणाली द्वारा काम किया गया। इस तरह उपेक्षित क्षेत्रों में लोगों को रोजगार मिला और सैनिकों को कम्बल मिले।

सोचता हूँ कहानी यहीं खत्म कर दूँ। दुर्भाग्यवश, जो कम्बल च्यांग के कर्मचारियों को मिले, वे सब सैनिकों तक न पहुँच पाए। काले बाजार में भी वे कम मात्रा में नहीं पहुँचे। दूसरे भ्रष्ट कर्मचारियों ने जिला सहकारियों, इकाइयों और बड़ी से बड़ी उद्योगशालाओं के व्यवस्थापक बनने में सफलता प्राप्त कर ली और जितना लूटते बना लूटते रहे। इसमें सबसे ऊपर च्यांग काई शेक,

सी० सी० गुट, कुंग्स, सुंग्स और उनके पिट्ठू लोग आते हैं, जो संयुक्तराज्य अमेरिका में देश का सोना चुरा-चुरा कर जमा करते रहे और लड़ाई को स्वयं उसी के हाल पर छोड़ दिया।

विज्ञानों की एकादमी (एकादमिया सिनिका) चुंगकिंग और कुमिंग ले जाई गयी। मुझे याद है कि भारत से मैं उनके लिए वैज्ञानिक परिपत्रों की प्रतियाँ तैयार करके भेजा करता था, इनसे वे ऐसे शोध में सहायता लेते थे जिनका युद्ध या राष्ट्रीय जरूरतों से कोई सम्बन्ध न था। कुछ मामलों में मुझे प्रकाशन की व्यवस्था भी करनी पड़ी थी। कुछ भले वैज्ञानिक और विद्वान भारत में उदार सरकारी सहायताओं पर अध्ययन कर रहे थे। सेना के एक कैप्टेन ने भारतीय दर्शन का अध्ययन करने के लिए लम्बी छुट्टी ले रखी थी, जब कि उसकी टुकड़ी मोर्चे की पंक्ति पर लड़ रही थी। युद्ध के वर्षों में बच निकलने की उसने बिना कठिनाई के व्यवस्था कर ली थी। दूसरे शब्दों में, अन्ततः सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ ही निर्धारक तत्त्व थे।

स्थानीय तकनीकें

इसके होते हुए भी, इससे एक और आधारिक सिद्धान्त निकालने दीजिए, यांत्रिकीय मामलों में विशेषतः उपभोग वस्तुओं के निर्माण में, **जितना सम्भव हो उतनी संख्या में स्थानीय उत्पादकों को लेते हुए, स्थानीय तकनीक का उपयोग करो।** स्वभावतः, इसका अर्थ प्राथमिक उत्पादकों से है, न कि सूदखोरों से, न कि सामंतों से। इसका अर्थ लालफीताशाही से रहित एक संगठन से भी है।

इस स्थल पर मुझे इस प्रणाली में और हाथ की कताई वाले

चर्खा-दर्शन में जो मूलभूत अन्तर है, उसे स्पष्ट कर देना है। चर्खा निर्माण की पूरी अवधि में कार्यान्वित होने में अपर्याप्त और अमितव्ययी है। स्व० महात्मा गाँधी ने हाथ की कताई में रहस्यात्मक गुणों की खोज की थी, जिसने इसे विद्युत-कताई मशीन से ऊपर उठा दिया था। परिणामित **खद्दर** वस्त्र के आकड़ों की विशद व्याख्या करने की अपेक्षा, मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि इसका प्रभाव राजनीतिक था, किन्तु खास राष्ट्रीय उत्पादन के क्षेत्र में कुछ कहना ही नहीं है। युद्ध के पहले ब्रिटिश आयातों का बहिष्कार करने के लिए इसने लज्जित किया और क्रान्तिकारी के लिए पट्टी के काम आया। आज खद्दर सरकारी बजटकी एक नाली है और पेशेवर राजनीतिकों या उनके सेवकों का एक चिन्ह है।

फिर भी, हैंडलूम उत्पाद्यों से इसका स्पष्ट विरोध है, जिसने अद्भुत नमूने पेश किए हैं, और भारतीय निर्यात के लिए एक कीमती सहायता रहा है। हैंडलूम जिसका अर्थ कार-खाने में कताई की गयी लच्छी से है, उत्पादन के अतिरिक्त समय के साधन रूप में, खास तौर से जब कृषि सम्बन्धी क्रियाएँ शिथिल पड़ गयी हों, उपयोग किया जा सकता है। यदि इसकी उचित देख-रेख में इसका उपयोग हो तो यह कपड़े के निर्यात में बचत कर सकता है और दूकानदार के काले बाजार का एकाधिकार भंग कर सकता है। अंशतः अक्षम और अन्यथा बेरोजगार लोगों को उपयोगी उत्पादन में लगा देने के लिए भी इससे विचारणीय सहायता मिल सकती है। अन्ततः स्थानीय साधनों और सामग्रियों की सहायता से यह कार्य में सरल और

निर्माण में आसान भी है। शायद, गंग हो और गाँधीवादी दृष्टि-कोण में मेरे विचार से यही मूलभूत अन्तर होना चाहिए। उपभोग मालों के उत्पादन के लिए जो भी स्थानीय पद्धतियाँ हों, उनका उपयोग करो, साथ ही बड़े उद्योग का निर्माण भी होता रहे।

वैज्ञानिक

यदि विज्ञान और यांत्रिकी का कोई उपयोग सम्भव है तो उन्हें योजना के अनुरूप अवश्य होना चाहिए। इससे न विज्ञान की स्वतंत्रता बाधित होती है, न तो अल्प-विकसित देशों के वैज्ञानिक की, पिछड़े देशों के वैज्ञानिक में और विश्व के उन भागों में रहने वाले उसके शिक्षक में, जहाँ विज्ञान बहुत पहले से विकसित होता रहा था, एक मूलभूत अन्तर है। इस बाद वाले को कीमती से कीमती बहुतायत यंत्रों की सुविधा, अच्छे पुस्तकालय, और संदर्भ-सामग्री और सहायक तकनिकविज्ञों की एक बड़ी संख्या प्राप्त होती है। विकसित देशों में ऐसे वैज्ञानिक को अक्सर अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ना पड़ता है। उसका कोष किसी सरकारी योजना से प्राप्त हो सकता है, **जिसकी शर्तें तृतीय श्रेणी के नौकरशाहों द्वारा निर्देशित होती हैं**, जो खोज के लिए गोपनीयता का आग्रह करते हैं, जिसे तुरन्त ही जनता के सामने प्रदर्शित किया जाना चाहिए। अक्सर, 'सुरक्षा' योजना में चोटी की वैज्ञानिक प्रतिभा बरबाद हो जाती है।

किन्तु अल्प-विकसित देशों में यह घटना नहीं हो सकती। अधिकतर, विश्व विज्ञान में उनके पास प्रथम दर्जे का तो क्या, एक उच्च द्वितीय दर्जे का वैज्ञानिक भी नहीं होता। ऐसे वैज्ञानिकों की स्वतंत्रता के विषय में यह कहना कि किसी के खर्च पर

वे जो चाहें करें, उनको इस बात की छूट देनी होगी कि वे योरप या अमेरिका के द्वितीय श्रेणी के यंत्र-विज्ञों की बुरी कृतियों की नकल करते हुए जन-कोष को बरबाद करें।

जीवन्त आवश्यकताएं

वैज्ञानिक को स्वतंत्र हो जाने दीजिए, किन्तु अपने देश के प्रति कुछ करते हुए उसे अपना जीविकोपार्जन करने दीजिए, जो कि जीवन्त आवश्यकताओं की श्रेणी में आता है। उदाहरण के लिए, यहाँ आप में से बहुत लोग भारत में विज्ञान की प्रगति से प्रभावित होने के लिए बाध्य हैं और अपनी सरकारों को हमारी नकल करने के लिए समझा-बुझा भी सकते हैं। लेकिन किस-किस विवरणों में ? उदाहरण के लिए हमारे पास प्रथम श्रेणी के भौतिक शास्त्री हैं। एक अरोपित स्थापना पर अणुशक्ति का हमारा विभाग एक साल में दसियों हजार रुपये खर्च कर रहा है। किन्तु वास्तव में उत्पादन की दृष्टि से इस देश में अणुशक्ति की मात्रा कितनी है। यह योजना जो १९६४ ई० से आयोग में रही है, कम से कम १९६८ के पहले तक सक्रिय नहीं होगी। देरी का समय आलोचना के बगैर बीत गया, जब कि कुछ राजनीतिज्ञ यह माँग करते हैं कि हमें अणुबम का उत्पादन करना चाहिए, जिससे हम बड़ी शक्तियों के बराबर ही श्रेष्ठता प्राप्त कर लें। वास्तव में जो स्थापना हमने की है, विदेशी "विशेषज्ञों" द्वारा निर्मित की गयी थी, जो अब तक समय से पुरानी पड़ गयी है, और यदि रूप-रेखा के अनुसार चलती रहे तो जो अणुशक्ति उत्पन्न होगी, वह अन्यत्र उत्पन्न की गयी शक्ति से कीमती पड़ेगी, और भारत में परम्परागत शक्ति से अधिक कीमती पड़ेगी। तब भी,

सभी मूलभूत व्यय, शोध, विज्ञान, या कुछ ऐसे ही सुन्दर शीर्षकों के अन्तर्गत लिखे जाते रहेंगे।

सौर-शक्ति

पुनः, मेरे कथन से गलत अर्थ न निकालिए। औद्योगिककरण के रास्ते पर चलने वाले हरेक अल्प-विकसित देश की तरह भारत को भी हर तरह की सुलभ शक्ति की जरूरत है। कितना कीमती क्यों न हो, अणुशक्ति मानव-मांसपेशीय शक्ति या बैलों से प्राप्त की गयी शक्ति से सस्ती होगी। लेकिन हमारी वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर्गत क्या यही सर्वोत्तम साधन है ? लगभग सभी देशों के लोग, यहाँ जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, अपने विकास के लिए सुलभ शक्ति का एक बेहतर और सस्ते से सस्ता साधन रखते हैं—सौर-शक्ति। इसमें अक्रमिकता का एक दोष है, लेकिन जहाँ क्रमिकता की जरूरत नहीं है, वहाँ इसका उपयोग किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए ५ से १० अश्वशक्ति की सिंचाई के पम्प, सौर-शक्ति से संचालित किये जाते तो प्रचुर मात्रा में हमारी कृषि को सहायता मिलती। इसके लिए केन्द्रीयकृत शासन की जरूरत न थी, और न किसी भारी भरकम काल्पनिक मूल स्थापना की जरूरत थी। जनव्यापी स्तर के उत्पादन से पम्प सस्ते पड़ते, उनके ईंधन का खर्च कुछ भी न था और उससे सिंचाई में सुविधा होती, वह सचमुच का वरदान होती। उनकी देख-रेख आसान होती और अधिकतर पिछड़े देशों में जन-संख्या का यांत्रीकरण करने में सहायक भी होती।

उसी तरह सौर-शक्ति से भोजन पकाने में सुविधा मिलती।

इससे तेल जैसे ईंधन की न केवल बचत होगी बल्कि (हमारे देशों में अधिकाधिक) इस तरह जंगलों की रक्षा होगी, और इसका अर्थ होगा पुनः जंगल-रोपण करना जिसके अभाव में देश की धरती निर्वसन हो गयी है। वगैर इस तरह के पुनः वन-रोपण के, हम सभी जानते हैं कि कोई भी कृषि सुधार सम्भव नहीं है। रेगिस्तान पर तपनेवाली धूप का उपयोग करते हुए उसे पुनः अधिकार में किया जा सकता है।

मैं यह सब एक अगले सिद्धान्त की ओर संकेत करने के लिए ही कह रहा हूँ : **नियोजन में हरेक स्तर पर पूर्ण आर्थिक चक्र की रूपरेखा बना ली जाय**। सौर-शक्ति के साथ कृषि का विकास और पुनः वन-रोपण स्वभावतः सम्मिलित हैं, जैसे खोई के उपयोग में धरती अन्न का चक्र पुनः स्थापित होने को था। विज्ञान का अर्थ कुछ प्रयोग-नलिकाओं के साथ कार्य करना नहीं होता, बल्कि एक देश-व्यापी पैमाने पर एक सम्पूर्ण देश के लिए कार्य करना होता है।

अन्तिम संकेत कुछ अच्छी तरह अपने देश में लागू हो सकता है। काजू विश्व-बाजार में इतना कीमती है कि भारत के साथ अनेक देश काजू की अधिक से अधिक खेती करते हैं। गोवा में कुछ वर्ष पहले, एक सर्वोत्तम काजू-उत्पादक क्षेत्र का मालिक होने के कारण, इसके विषय में मुझे कुछ बातें मालूम हैं। इसका पेड़, बिना देख-रेख के घने जंगल में उगता है। किन्तु अपनी छाया में रहने वाले पौदों को पूर्णतया नष्ट कर देता है। जल का थाला तुरन्त सूख जाता है और क्षार उत्पन्न हो जाता है। जहाँ काजू फल की ढेरी एकत्र की जाती है, वहाँ वर्षों बाद तक घास भी नहीं उगती।

काजू की रोपाई का उचित उपयोग करने के लिए एक सशक्त रासायनिक उद्योगशाला की आवश्यकता होगी, जो पेड़, फल, और नट-शेल के सशक्त क्षार युक्त उपउत्पादों का उपयोग करती, जो इस समय पूरी तरह बरबाद हो रहे हैं। इसका अर्थ पुनः यह होता है कि इसके लिए, जिस देश में हममें से अधिक लोगों को रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उससे बेहतर विकसित देश की जरूरत है। यदि हम तुरन्त लोभ के रास्ते पर चल पड़ेंगे, जैसा कि हमारे राज्य के कुछ वन-विभाग कर रहे हैं, तो सापेक्षतः छोटे-मोटे लाभ के लिए, वनों का रहा-सहा तत्व भी नष्ट हो जायेगा। काजू-बगान अवश्य ही उचित ढङ्ग से मेंड़ से घेर दी जाय, जिससे काजू के पेड़ दूसरे वनस्पतियों को नष्ट कर चुके हों तो भी पानी रुका रहे।

कार्य-परिणिति नहीं

इन उदाहरणों को मैं बहुगुणित कर सकता था। नारियल के पेड़ जो हमारे समुद्र-तटीय पट्टी की ऐसी सशक्त विशेषताएँ हैं, फिर भी उनका उचित उपयोग होना अभी बाकी है। अधिक से अधिक जो कुछ किया जा सकता है, हमारे नारियल की शोध-संस्था को मालूम है, किन्तु शायद ही किसी को मालूम हो कि नारियल की शोध-संस्था अस्तित्व में है। नारियल के जटा-तन्तुओं से रॉयन उत्पन्न किया जा सकता है, जननात्मक विधि से पेड़ों की नस्ल सुधारी जा सकती है, अधिक उपयुक्त पद्धतियों से तेल निकाला जा सकता है, और बगानों में अन्त में बिखरी वस्तु के लिए कारखाने स्थापित किए जा सकते हैं। लेकिन इसके लिए

आँकड़ों को एक रेखीय समीकरण में बैठा कर बरसात के आँकड़ों के विरुद्ध खाना पूर्ती की गई थी जो ठीक-ठीक मालूम थे। अन्ततः, क्षेत्र के नक्शे का निरीक्षण करते हुए, यह दिखा देना सम्भव था कि बहुत छोटे-छोटे बाँधों की तुलना करने पर बड़े बाँधों का कोई उपयोग न होता, जो मेंड़ बँधाई में और मौसमी जल को रोकने में पर्याप्त रूप से सहायक होते। छोटे बाँध विद्युत-सप्लाई के उपयोग में न आते, लेकिन कृषीय प्रयोजनों के लिए, मानसूनी प्रदेश जहाँ जमीन कटी हुई है बहुत उपयोगी सिद्ध होते। इसके बावजूद, श्रम-सप्लाई और अधिकाधिक सामान स्थानीय होते; बहुत कम सीमेंट और न मशीन की जरूरत पड़ती। इसमें अर्थ-व्यवस्था को आगे न केवल लाभ होता, बल्कि गाँव वालों को अपनी धरती विकसित करते हुए, उन्हें कुछ धन कमाने की छूट देकर, उनकी विपत्ति को भी कम किया जा सकता था। ऐसे छोटे-छोटे बाँधों से बहुत ही कम खेत की फसल सींची जाती, किन्तु इनमें कुल जल जितना एकत्र होता, वह लगभग एक बड़े बाँध के बराबर ही होता।

अन्त में मेरा फार्मूला मान लिया गया, क्योंकि विशेषज्ञ उसे अपना कह कर प्रस्तुत कर सकता था (परिणामतः उसकी तरक्की भी हुई)। मेरे शेष सुझाव सभा के सम्मुख नहीं रखे गये—जिसके लिए मुझे स्वभावतः निमंत्रित नहीं किया गया।

सांख्यिकी

अब तक मेरे सभी सुझाव आलोचनात्मक और एक सोच-विचार की सीमा तक निषेधात्मक रहे हैं। एक सकारात्मक देन प्रस्तुत करने के लिए मुझे एक विशेष तकनीक के विषय में बताने

नियोजन की प्रभावपूर्ण एवं उपयुक्त पद्धति अत्यावश्यक है, जो सम्भवतः हमारे पास नहीं है।

हमारे नियोजन-आयोग द्वारा अद्भुत दार्शनिक निबन्ध लिखे जाते हैं, लेकिन जब उपयोगी व्यवहार में उन्हें कार्यान्वित किया जाता है, तो पूर्णतः व्यर्थ सिद्ध होते हैं। निजी-क्षेत्र तुरन्त मुनाफा चाहता है, और जन-क्षेत्र भारी पैमाने के उद्योग पसन्द करता है, जिस की अच्छी तस्वीर बना कर, समाचार-पत्रों में शीर्षक दे कर प्रकाशित कर दिया जाता है और चुनाव प्रचार में उपयोगी सिद्ध होता है।

अनुपयुक्त नियोजन

एक अनुपयुक्त नियोजन का मुझे उदाहरण प्रस्तुत करने की छूट दीजिए, जिसमें मैं व्यक्तिगत रूप से शामिल था। वह एक बाँध-निर्माण की समस्या थी। यदि बाँध बहुत बड़ा होता तो धन व्यर्थ खर्च होता; यदि बहुत छोटा होता तो अक्सर पानी सूखने का भी खतरा था। मान लीजिए कि, हमें ऐसे बाँधों की जरूरत है, जो उपलब्ध वर्षा और जल-प्रवाह के समय बहुत समय में, बीस साल में एक बार से अधिक नहीं सूखेंगे। शक्ति के मूल्यांकन के लिए ठीक फार्मूला क्या है? विशेषज्ञों ने परस्पर झगड़ा किया, तो समस्या मेरे सम्मुख रखी गयी।

आर० ए० फिशर के परीक्षण के आधार पर उचित फार्मूला प्रस्तुत करना एक आसान-सी बात थी। किन्तु आकड़ों की छानबीन जब मैंने गहराई से की, तो स्पष्ट हो गया कि बहुत से आँकड़े बासी पड़ गये थे। वस्तुतः निश्चित वर्षों के लिए जल-प्रवाह का कोई लेखा-जोखा ही नहीं किया गया था। शेष

की इजाजत दीजिए। इसे सांख्यिकी कहते हैं और किसी भी नियोजन के लिए यह उपयोगी होगी, चाहे विशेषज्ञ देशी हों या विदेशी, या साधनों का विभाजन करना हो। वास्तव में कोई नियोजन सफल नहीं हो सकता, जो अच्छी सांख्यिकी का ठीक-ठीक उपयोग नहीं करता।

अधिकतर लोगों के लिए, जो इस शब्द को सुनते हैं, सांख्यिकी को वे पूर्ण गणना की जन-गणना किस्म जैसी मान लेते हैं। फिर भी, हरेक वस्तु की गणना कभी-कभी ही सम्भव है और अधिकतम अल्प-विकसित देशों में अक्सर व्यवहारिक भी नहीं है। आवश्यक कर्मचारी-संगठन उपलब्ध नहीं हैं, हिसाब-किताब की सेवाएँ ढुल-मुल या अपर्याप्त होती हैं। सबसे बुरा यह है, कि लोग गलत सूचना देते हैं, क्योंकि वे यह सोचते हैं कि जो आँकड़े वे प्रस्तुत कर रहे हैं, उनके लिए लाभ कर होगा। उदाहरण के लिए, कर बचाने में, या सरकार से प्राप्त होने वाली किसी सहायता के विषय में यही होता है। अन्ततः इस प्रकार की तथ्यमूलक सांख्यिकी प्राप्त करने की प्रक्रिया धीमी है, जब कि गलत सांख्यिकी अनुपयोगिता से भी बदतर है।

यह सुझाव पेश करना हर तरह से अच्छा होगा कि हवाई छाया-चित्रण से (एयर फोटोग्राफी) विविध किस्म की फसलों को शीघ्रता से मापा जा सकता है और फसलों को पहचाना भी जा सकता है। मुझे मालूम है कि यह सत्य है। किंतु कितने ऐसे देश हैं जिनके लिए हवाई छाया-चित्रण, और मूल्यांकन के लिए विशेषज्ञ कर्मचारी-संगठन सुलभ हो सकता है? भारत के पास प्रथम दर्जे के सांख्यिकीय-विद् हैं, किन्तु वे डरते हैं कि हवाई छाया-

चित्रण का अर्थ रोजगारों का अभाव और छटनी हो सकता है, इसलिए वे इसे "अव्यवहारिक" करार कर देते हैं।

मुझे इतना और जोड़ देने दीजिए कि दूरस्थ देश में हमारे सांख्यकों ने जो यश प्राप्त किया है (और सैद्धान्तिक परिपत्रों की एक बड़ी संख्या जिसमें ब्लू-बुक रिपोर्टों की उससे भी बड़ी एक संख्या के लिए एक बृहत् पृष्ठभूमि तैयार होती है) हमारे सांख्यक अपने मूल कार्य में असफल रहे हैं, यद्यपि उसमें उनकी गलती न थी वे इस बात को ठीक-ठीक बतलाने में असमर्थ रहे हैं कि अन्तिम वर्ष की फसल से कितना अधिक भोजन उपलब्ध है। परिणामतः हमें कई तरह के अटकलों से यह सोचना पड़ा कि भारत को कितना अन्न आयात करने की जरूरत है, चाहे वह कर्ज के रूप में हो, दान या विक्रय के रूप में हो। मैंने इस बात को प्रकाशित रूप में देखा है कि पाँच, सात, दस, पन्द्रह, यहाँ तक कि बीस प्रतिशत तक हमारा अनाज कर्तदत्ती और कीड़े खा गये हैं। किसी को नहीं मालूम है कि ये आँकड़े कैसे प्राप्त किए गये।

यदि भोजन जैसी मूलभूत समस्या सचमुच के योग्य मनुष्यों द्वारा नियंत्रित नहीं की जा सकती, तो मनुष्यों को जिस रूप में उपयोग किया गया है उस तरीके में ही कुछ दोष है। पुनः हमें सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ की ओर देखना पड़ता है।

बेहतर पद्धतियाँ

उचित रूप से सांख्यिकी का उपयोग करने की इच्छा मान ली गयी, अब जन-गणना से बेहतर, साथ ही त्वरित एवं कीमती पद्धतियाँ मौजूद हैं। ये नामांकित नमूने के सर्वेक्षण हैं; इसकी

तकनीक अच्छी तरह ज्ञात है। किसी को एक अल्प प्रतिशत गिनना पड़ता है और कुल योग का अनुमान करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस अनुमान की तथ्यात्मकता की सीमा दिखाने के लिए और पद्धतियाँ मौजूद हैं, जिससे एक सुयोग्य अन्तर को छूट दी जा सके।

मैं विस्तार में जाकर आप में से अधिक लोगों को उबाना नहीं चाहता। किन्तु यदि गाँवों की विविध किस्मों के विषय में पर्याप्त जानकारी है तो गाँवों का पाँच प्रतिशत से न ज्यादा और अक्सर एक प्रतिशत से कम का नमूना सारी मूलभूत सूचना देने के लिए काफी होगा। नमूने को उचित रूप से विखेर देना पड़ता है और हरेक किस्म के गाँव को अनुपातिक रूप से अवश्य ही प्रतिनिधित्व करना पड़ता है। वास्तविक नमूने को पर्याप्त रूप से अवश्य ही अध्ययन करना चाहिए, और इसके विषय में पूर्ण सत्य एवं तथ्यतः सूचना प्राप्त करना चाहिए।

इस तरह का नमूना-निरीक्षण दो सप्ताहों में आँकड़े प्रस्तुत कर सकता है, जिसे किसी पूर्णगणना से प्राप्त करने में वर्षों लग जाएँगे। मूलतः इसके दो उपयोग हैं; उद्योग और जनव्यापी उत्पादन में वस्तु की एकरूपता और गुण के नियंत्रण के लिए।

उदाहरण के लिए विभिन्न स्थानों में विभिन्न भट्ठियों के सीमेंट गुण में अलग-अलग होते हैं। यहाँ तक कि उसी भट्ठी के विविध घान मूलभूत अन्तर प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इंजीनियर इसके लिए अपने निर्माण कार्य में छूट दे सकता है, यदि उसे औसत ताकत और उचित व्यतिक्रम का परीक्षा आँकड़ा प्राप्त हो। उचित रूप से बानगी लिए गये प्रत्येक वर्ग से दो मुट्ठी सीमेंट

ले कर कोई एक आदमी इनकी गणना कर सकता है। ऐसे एक सांख्यिकीय सहायक को प्रत्येक सीमेंट के कारखाने, चीनी उद्योग, या ऐसे औद्योगिक व्यापार में आसानी से नियुक्त किया जा सकता है। निश्चय ही ऐसे उद्योगों की कुल उपज आसानी से गिनी जा सकती है। ऐसे मामलों में जनगणना और नमूना-विधि दोनों किस्मों की सांख्यिकी काम आती हैं।

कृषकीय कच्चे मालों के साथ बिलकुल ही भिन्न परिस्थिति है। पहले ही फसल की अच्छी भविष्यवाणी किए वगैर निर्यात के लिए, कच्चे मालों की कार्यवाही के लिए, या इसी कारण अकाल तक रोकने के लिए योजना बनाना सम्भव नहीं है। पूरी तरह लवाई का मौसम आने के पहले फसल कटाई के प्रयोगों से बहुत अधिक स्थानीय भेद के बावजूद आसानी से भविष्यवाणी प्रस्तुत की जा सकती है। स्वभावतः, इससे भी अधिक उपयुक्त पद्धतियाँ हैं। प्राप्त बीज की किस्म के लिए यदि मशीन की बोआई का व्यवहारतः उपयोग किया जाता हो तो एक रूप क्यारियों में वस्तुतः उगे हुए पौदों की संख्या सरलता से गिन कर, और प्रत्येक से कुछ बालियाँ लेकर, आश्चर्यजनक ढंग से ठीक-ठीक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाता है।

स्थानीय अनुभव

रूमानिया के दाँबरूजा नामक स्थान में मैंने इसे देखा था, जहाँ ४०० पौदे प्रत्येक वर्ग मीटर में यांत्रिक रूप से लगा दिये गये थे, और गणना के चौखटे एक वर्ग मीटर थे। इस मामले में गेहूँ की सहकारियों द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी और केन्द्रीय संस्था ने प्राकृतिक खतरों, जैसे बाढ़ और सूखे को छूट

देते हुए, अग्रिम रूप से अच्छी तरह फसल का अनुमान प्रस्तुत किया था। हम सभी इतने सौभाग्यशाली नहीं है कि गेहूँ की इतनी बड़ी सहकारियाँ और मशीन की बोआई सुलभ कर सकें। ऐसे मामले में, मेरा सुझाव था कि स्थानीय अनुभव उपयोग में लाए जा सकते थे।

स्थानीय अनुभव का यह अर्थ होता है कि किसान उसी जमीन पर वर्षों से जरूर रहते आए हों, उपयोग में लाए गये बीजों की किस्म विशेष से अवश्य परिचित हों, और उसी तकनीक के आधार पर अवश्य ही खेती करते हों। ऐसे मामले में, भारतीय किसान ६'५ या और अच्छे प्रतिशत के अंतर्गत मूल्यांकन प्रस्तुत कर सकते हैं। मुझे बहुत विस्मय है कि चीन के किसान ३'५ प्रतिशत के लगभग ही मूल्यांकन प्रस्तुत कर सके थे; चीन की गड़बड़ी (१९६० के उदाहरण) अपर्याप्त और नौकरशाही नियंत्रण सांख्यिकीय संगठन के कारण थी, जब तक लवाई न हो गई और फसल आधी खा नहीं ली गयीं, तब तक उसने कुछ भी ठीक-ठीक नहीं प्रस्तुत किया।

उनकी सभी भविष्यावाणियाँ बार-बार संशोधित की गयीं, किन्तु अक्सर व्यर्थ गयीं। उन्हें अत्यंत धीमी पद्धतियों से एकत्र किया जाता था, उदाहरणार्थ, प्रपत्र आदि भर कर, स्थानीय मुख्य कार्यालयों में भेज दिया जाता था और वहाँ से अंततः पेकिंग। न तो सांख्यक, न अग्रगणी वैज्ञानिक ही किसानों से यह पूछने का कष्ट करते थे कि उन्होंने फसल का मूल्यांकन कैसे किया, न तो क्रमिक फसल में अनुमानों की तुलना करने का सुझाव दिया।

सत्य की ओर

हमारे किसान के साथ परेशानी यह है कि आप उसे अपने प्रति विश्वस्त बनाएँ, ताकि वास्तविक मूल्यांकन देने पर अतिरिक्त कर नहीं बढ़ेंगे। अशिक्षित किसान और प्रशिक्षित सांख्यक में यह फर्क होता है कि किसान बृहत् गणना नहीं कर सकता, लेकिन खेत-खेत के अनुमान प्रस्तुत कर सकता है; दूसरी ओर, यदि किसान अपने उपयोग के लिए गलत अनुमान प्रस्तुत करता है (चाहे इसे वह किसी सरकारी अभिकर्ता से बताए) तो उसे भूखा रहना पड़ सकता है। सांख्यक को उसको अनुमान या उसका औसत व्यतिक्रम खा कर नहीं जीना पड़ता।

इस क्षेत्र में किसानों से सदा वास्तविक आंकड़ा प्राप्त कर लेने में ही कठिनाई है। चीन में यह कठिनाई नहीं है, किन्तु मेरे द्वारा इसका मूल्यांकन किए जाने के पहले, किसी को किसानों के अनुमान के विषय में परेशानी नहीं होती थी। ऋण देने वाले, जमींदार, दलाल क्रेता, और अन्य दूसरे स्वार्थी दल, साथ ही बड़े शहर के मुनाफाखोर, अन्न के अढ़तिये जब यह देखते हैं कि इसे गुप्त रखना उनके लिए फायदेमंद है तो सत्य गुप्त रहता है। पुनः एक बार हम संदर्भ की ओर लौट आते हैं। एक सीमा स्पष्ट है जिससे आगे देश में प्रचलित सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की उपेक्षा करते हुए नहीं जाया जा सकता।

नमूनासांख्यिकी की एक किस्म प्रजातंत्र के लिए, उदाहरण। मतसंग्रह एक मूल्यवान उपलब्धि है, विकसित देशों में अपने विज्ञापन अभियान की सफलता, अपने मालों (साबुन, दंत-मंजन, आदि) की लोक-प्रियता का मूल्यांकन करने के लिए और ऐसे ही मुनाफा

कमाने के जोखिमों के लिए व्यापारी संस्थाओं द्वारा इस पद्धति का उपयोग किया जाता है। राजनीतिक लोग इसका उपयोग यह देखने के लिए करते हैं कि जनमत का रुख किधर जा रहा है। संयुक्त-राज्य अमेरिका जैसे बड़े देश में भी बानगी लेने वालों की संख्या ७०० से १००० तक के आगे बढ़ाने की जरूरत नहीं समझी जाती, जिससे एक छोटा प्रशिक्षित कर्मचारी वर्ग लगभग एक सप्ताह में (नमूना प्रस्तुत करने के आदि से लेकर अन्तिम आँकड़ा तक) परिणाम प्रस्तुत कर सकता है।

जनव्यापी निरीक्षण

किन्तु अधिक अल्प-विकसित देशों में यह व्यवहारिक नहीं है। मैं एक दूसरी तकनीक का सुझाव प्रस्तुत करने की इजाजत चाहता हूँ, नमूनापद्धति से इसका भी उपयोग होगा, किन्तु सिद्धान्तों में फर्क रहेगा। इसे जनव्यापी निरीक्षण कहा जाता है, और पहली बार ब्रिटिश नृतत्वशास्त्री बी० मालिनोवस्की ने इसे विकसित किया था। युद्ध के समय इंगलैंड में यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ था। मुख्य धारणा यह है, विशेष रूप से गढ़े हुए प्रश्नों के बदले जिनका उत्तर हाँ या नहीं में या कुछ दूसरे विशिष्ट तरीके से दिया जा सकता है, कुछ चुने हुए लोगों को कुछ समस्याओं पर अपनी तरह से राय व्यक्त करने दीजिए, जनव्यापी निरीक्षण में परिणाम नमूना-सर्वेक्षण की अपेक्षा अधिक आसानी से गिना जा सकता है, किन्तु प्रशिक्षित नृतत्वशास्त्री या किसी कुशल शासक के लिये पर्याप्त सूचना प्रस्तुत करता है। इससे निसंदेहास्पद जरूरतें उद्घाटित होती हैं जिसे पश्चिमी मतवाद के सरोवर द्वारा पोषण

नहीं प्राप्त हो सकता। किन्तु प्रश्न के उत्तर में व्यक्ति ने जो वास्तविक और निर्भीक वक्तव्य दिया है, वह निरपेक्षतः अनिवार्य है। वह पुरुष हो या औरत उसे पूर्ण गोपनीयता की गारंटी और विश्वास प्राप्त होना चाहिए, और अत्यधिक निर्भीकता से बोलने के कारण अवश्य ही प्रतिशोधों के डर से मुक्त हो। ऐसे निरीक्षण "वारक्ला समाज वैज्ञानिक समूह" द्वारा पोलैंड में बड़े प्रभाव पूर्ण ढंग से उपयोग में लाए गये थे। मुझे यह सुझाव प्रस्तुत करने दीजिए कि हमारे वे देश जो जनतंत्र के लिए संघर्ष करते हैं, जनतांत्रिक उद्देश्यों और जनप्रिय कामनाओं को सुनिश्चित करने के एक उपयोगी तरीके के रूप में इसका इस्तेमाल करेंगे।

•••